ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-3* April-2017
Innovation The Research Concept

भारत पर प्रथम मुस्लिम आक्रमणः प्रसार एवं प्रभाव

जितेन्द्र सिंह नौलखा
असिस्टेंट प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास विभाग,
के0 एन0 पी0 जी0 कॉलेज,
ज्ञानपुर, भदोही,
उ0 प्र0

सारांश

आठवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में अरबों सिंध पर आक्रमण और 11–12 वीं शताब्दी के तुर्क आक्रमण ने भारत की राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को एक नये कलेवर में प्रस्तुत किया। अरबों के आक्रमण के फलस्वरुप जहाँ राजनैतिक क्षेत्र में परिवर्तन तो अधक स्थायी न रहा, जबकि सांस्कृतिक क्षेत्र में धर्मिक एवं व्यापारिक दृष्टि से अत्यन्त प्रभावकारी एवं दूरगामी परिणम आऐ। अरब एवं तुर्क आक्रमण के नैपथ्य में तत्कालीन राजनैतिक आस्थिरता एवं धर्मिक क्षेत्र में लगातार नये पंथों का पटल पर उभर कर आना भी विचारणीय है। आक्रमणकारियों की भारतीय क्षेत्र पर कुटृष्टि रखने के पीछे धार्मिक उद्देश्यों (इस्लाम का प्रचार–प्रसार) के अतिरिक्त भारत से धन प्राप्त करने की लालसा भी प्रमुख कोरण थी। भारत में आठवीं शताब्दी के प्रथम चरण में अरबों के आक्रमणों के फलस्वरुप जो यात्रा प्रारम्भ हुई, बारहवीं अभियानों ने दिल्ली सल्तनत की स्थापना के रुप में पराकाश्ठा पर पहुँचा दिया, जिससे भारत पर पहली बार मुस्लिम सत्ता स्थापित हुई।

मुख्य शब्द : पूर्व मध्यकाल, अरब, तुर्क, आक्रमण, इस्लाम धर्म, मुस्लिम, सामाजिक।

प्रस्तावना

सातवीं सदी में अरब में इस्लाम के उदय ने परस्पर संघर्शरत अरब कबीलों को शक्तिशाली साम्राज्य के सूत्र में बांध दिया और अरबों का व्यापक साम्राज्य अब्बासियों के नेतृत्व में इस्लाम के जन्म से केवल सौ साल में फैल गया। सन् 712–13 ई0 में अरबों ने सिन्ध पर भी विजय प्राप्त कर लिया था। इसके पश्चात् अरबों ने सिन्ध के गवर्नर जुनेद के नेतृत्व में राजस्थान तथा गुजरात के कुछ प्रदेशों पर भी अधिकार किया, किन्तु उसकी यह विजय अस्थायी थी और उत्तर भारत के शक्तिशाली राजाओं ने अरबों का भारत में और अन्दर प्रवेश रोक दिया। यद्यपि अरब भारत में विशेष सैनिक सफलता नही प्राप्त कर सके किन्तु उनका प्रभाव तत्कालीन भारत पर पड़ा, विशेषतः व्यापार के क्षेत्र में।[1]

नवीं सदी का अन्त होते–होते अब्बासी साम्राज्य पतनोन्मुख हो चला था और उसका स्थान इस्लामी रंग में रंगे तुर्को द्वारा शासित राज्यों की श्रृंखला ने लिया। तुर्कों ने राममहल के रक्षकों और भाड़े के सैनिकों के रुप में नवीं सदी में अब्बासी साम्रज्य में प्रवेश किया था। सन् 1000 से 1200 ई0 तक के काल के दौरान पश्चिम और मध्य एशिया तथा उत्तर भारत में तेजी से परिवर्तन हुये। इन्हीं परिवर्तनों के परिणाम स्वरुप उस काल के अन्तिम चरण में तुकों ने अपनी सैनिक शक्ति के सहारे उत्तर भारत में प्रवेश किया।[2] दसवीं शताब्दी में जिन तुर्कों का भारत से सम्पर्क हुआ, वे नवस्थापित स्वतंत्र राज्य गजनी के गुलाम शासक थे। सर्वप्रथम गजनी षसक सुबुक्तगीन का नाम आता है जिसने भारत के कुछ क्षेत्रों पर अपना अधिकार स्थापित किया। सुबुक्तगीन के ही पुत्र महमूद गजनी ने 1000 ई0 से 1027 ई0 के मध्य भारत पर सत्रह आक्रमण किये।[3]

प्रारंभिक आक्रमणों का लक्ष्य पेशावर और पंजाब पर राज्य करने वाले हिन्दूवाषी शासक थे, इतना ही नहीं महमूद मुलतान के मुसलमान राजाओं के विरूद्ध भी लड़ा । ये राजा इस्लाम के जिस पंथ के अनुयायी थे उसका महमूद घोर विरोधी था। हिन्दू शाही शासक महमूद के पिता के समय से ही गजनवियों से जूझते रहे थे।[4] महमूद ने पंजाब की पहाड़ियों पर बसे नागरकोट और दिल्ली के निकट थानेश्रर पर भी आक्रमण किया। लेकिन उसने सबसे साहसिक और प्रबल आक्रमण 1018 ई0 में कन्नौज पर तथा 1025 ई0 में सोमनाथ पर किया । कन्नौज पर किये गये हमले में उसने मथुरा और कन्नोज दोनों की ईट से ईट बजा दी और दोनों नगरों को जी भर के लूटा।[5]

महमूद को केवल एक आक्रमणकारी और लुटेरा कहना सही नहीं है। पंजाब और मुलतान पर गजनवियों की विजय ने उत्तर भारत की राजनीतिक

स्थिति को पूरे तौर पर बदल दिया। 150 वर्षों तक यदि वे भारत में अपना राज्य विस्तार नहीं कर पाये तो उसका कारण इस काल में मध्य एशिया और उत्तर भारत में तेजी से हो रहे परिवर्तन थे। महमूद की मृत्यु के पश्चात् गजनी साम्राज्य गजनी और पंजाब तक सीमित रह गया।[6]

गजनवियों की पंजाब विजय के बाद मुसलमान और हिन्दुओं के बीच एक–दूसरे से दो प्रकार के सम्बन्धों की प्रक्रिया प्रारंम्भ हुई–पहले लूट के लोभ पर आधारित सम्बन्ध और दूसरे स्तर पर मुसलमान व्यापारियों का इस देश में स्वागत किया गया क्योंकि वे मध्य तथा पश्चिमी एशियाई देशों के साथ भारत का व्यापार बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुये। उत्तर भारत के कुछ शहरों में मुसलमान व्यापारियों की बस्तियां स्थापित हो गई और इन बस्तियों के बस जाने के कारण बहुत से मुसलमान धर्मोपदेशकों का आगमन हुआ, जो 'सूफी' कहलाते थे। इस प्रकार हिन्दू और इस्लाम धर्मों तथा हिन्दू और इस्लामी समाजों के बीच आदान–प्रदान की एक प्रक्रिया प्रारंभ हुई।[7] धीरे–धीरे लाहौर, फारसी संस्कृति का केन्द्र बन गया और पंजाब प्रान्त से अनेक धर्मप्रचारक, व्यापारी, विद्यार्थी भारत में फैलने लगे। भारत में तुर्क–फारसी प्रषासनिक संस्थाओं का गठन हुआ और महमूद तथा उसके उत्तराधिकारी मसूद ने हिन्दूओं को बड़ी संख्या में रोजगार दिया। मसूद की आधी सेना में हिन्दू ही थे। भारत से वह अनेक कारीगर ले गया, जिन्होंने अपनी कला कृतियों से महमूद के नाम को तत्कालीन मुस्लिम जगत में प्रतिष्ठित किया और मध्य एशिया को भारत की सांस्कृतिक देन से लाभान्वित किया।[8]

बारहवीं सदी के अन्त में तुर्क कबाईलियों के एक अन्य समूह ने मुहम्मद गोरी के नेतृत्व में उत्तर पश्चिम से भारत पर आक्रमण किया। गोरियों ने अपने राजनीतिक जीवन का प्रारम्भ गजनी के अधीन शासकों के रुप में किया था। किन्तु शीघ्र ही वे गजनवियों से पूरे तौर पर स्वतन्त्र हो गये थे। मुहम्मद गोरी (जिसे मुइज्जुद्दीन मुहम्मद कहते हैं) ने गजनी को अपना मुख्य स्थान बनाकर भारत पर कई बार आक्रमण किये और दिल्ली सल्तनत की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। मुहम्मद गोरी का प्रथम आक्रमण 1175 ई0 में हुआ और सन् 1205 ई0 तक वह बराबर साम्राज्य विस्तार अथवा पूर्व विजित राज्य की रक्षा के लिये भारत पर आक्रमण करता रहा।[9] भारत में तुर्कों द्वारा स्थापित दिल्ली सल्तनत की स्थापना 1206 ई0 में हुई। जिसका विघटन पन्द्रवीं सदी के अन्त में हुआ जिसके बाद देश के विभिन्न भागों में कई स्वतन्त्र राज्य स्थापित हुये।

सामाजिक–धार्मिक प्रभाव

भारत और अरब के बीच चिरकाल से व्यापारिक सम्बन्ध चले आ रहे थे सातवीं शताब्दी के इस्लाम धर्म के अपनाने से पूर्व भी अरब वाले व्यापार तथा वाणिज्य के कारण भारतीय पश्चिमी समुद्र तट के प्रदेशों में आया–जाया करते थे, जहाँ उनका हार्दिक स्वागत होता था। अरबों द्वारा मुस्लिम धर्म अपनाने पर भी इनके साथ भारतीयों के व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आया। इस्लाम के साथ भारत के प्रांरभिक वाणिज्यीय एवं सांस्कृतिक सम्पर्क का इतिहास स्वयं पैगम्बर के काल तक खोजा जा सकता है।[10] भारतीय भूमि पर अधिक नजदीकी सम्बन्ध सर्वप्रथम दक्षिण भारत के पश्चिमी तट पर अरबों के निवास से प्रारंभ होता है, किन्तु उत्तर भारत में इसका प्रारंभ आठवीं सदी में सिन्ध पर अरब आधिपत्य के पश्चात प्रारंभ हुआ। अरबों के आक्रमणों और उनके आगे बढ़ने के विरुद्ध सुरक्षा दीवाल के रुप में गुर्जर प्रतिहार आगे आये और इसीलिये सुलेमान ने जुज्र के राजा, जिसका समीकरण भोज प्रतिहार (लगभग 836–882 ई0) से किया जा सकता है, को 'अरबों का विरोधी' कहा है। परन्तु गुर्जर प्रतिहार के प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रकूट अपने राज्य में बसे हुये मुस्लिमों को अनेक लाभ स्वीकृत करने में उदार थे।[11] साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि उनके राज्य में मुसलमान नगरों के राज्यपाल भी नियुक्त किये गये थे। दसवीं सदी तक भारत के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में इस्लाम का प्रभाव एक कारक के रुप में विकसित होना प्रारंभ हो गया था।

सोमदेव के यशस्तिलक[12] (दसवीं सदी) में भरत के धार्मिक सम्प्रदायों में कोलों एवं का पालिकों के समान एक सम्प्रदाय का वर्णन मिलता है। यशस्तिलक में सम्प्रदाय का नाम नहीं दिया गया है, किन्तु इसके विचार महाराज–पराजय में वर्णित रहमान के विचार के समान हैं। रहमान के अनुसार गोमांस ग्रहण करने में कोई पाप नही है और घनिक के अनुसार धर्म के अन्तर्गत सन्यासियों का बध भी सम्मिलित है।[13] दोनों शब्दों के समीकरण के विषय में निश्चित नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त नाटक में वर्णित रहमान कम से कम इस्लाम से प्रभावित हिन्दुओं का एक संवर्ग था।[14] कुछ विद्वानों के अनुसार नवीं सदी से दक्षिण भारतीय धार्मिक एवं सामाजिक विचारों में कुछ ऐसी विशेषतायें परिलक्षित होती हैं, जिन पर इस्लाम के प्रभाव का सशक्त संकेत मिलता है, जैसे–एकेश्वरवाद की बढ़ती प्रवृत्ति पर बल, पूजा की संवेगात्मक विधि, आत्म समर्पण (प्रपत्ति) का सिद्धान्त, गुरु (आचार्य) की महिमा, जाति व्यवस्था में कुछ शिथिलता एवं धर्म के वाहय रुपों में कमी आदि। भक्ति के सिद्धान्त एवं शूद्रों के प्रति एक उदारवादी दृष्टिकोण को भी उत्तर भारत में परवर्ती काल में यात्रा करता हुआ पाया कहा गया है।[15]

किन्तु, जिन विशेषताओं को इस्लाम का प्रभाव माना गया है, उनमें कुछ विशेषतायें स्वदेशी धर्मिक धाराओं के आन्तरिक अंग के रुप में विद्यमान थीं और अन्य दीर्घकाल से भारतीय सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में क्रियाशील कुछ आन्तरिक शाक्तियों के विकास का परिणाम थीं। गुरु (धार्मिक शिक्षक) को दिया गया महान महत्व रहस्यवादी बौद्ध धर्म एवं 'अनन्य शाक्त' तान्त्रिक सम्प्रदायों का एक मुख्य सिद्धान्त था। एक लोकप्रिय आन्दोलन के रुप में भक्ति का उत्कर्ष देशी ईश्वरवादी धर्मिक विचार और तत्कालीन विशिष्ट सामाजिक प्रक्रिया से घनिष्ट रुप में सम्बन्धित था। धर्म के वाहयरुपों की निरर्थकता सरहपा और अन्य सिद्धों (लगभग 760–1300 ई0) के द्वारा सशक्त रुप में घोषित की गई थी। रामानुजाचार्य षूद्रों के मंदिर प्रवेश एवं उन्हें भक्ति, प्रपत्ति तथा गुरु के महत्व के आदर्ष को प्रदान करने में कोई महत्वपूर्ण नवीन पद्धति या सुधार नही ला रहे थे अपितु परम्परागत मार्ग का अनुगमन कर

रहे थे।[16] बारहवीं सदी के वसिन द्वारा व्यवस्थित लिंगायत व्यवस्था में प्राप्त सामाजिक एकता की विशेषतायें पहले ही कुछ सीमा तक सिद्धों एवं अन्य देशी धार्मिक सम्प्रदायों द्वारा उपदेशित की जा चुकीं थीं। बारहवीं सदी में ब्राहमण–पुरोहितों के वर्ग का विरोध स्वयं ब्राहमणों के एक वर्ग एवं गैर–ब्राहमण गुरुओं द्वारा किया गया था।

हिन्दुत्व पर इस्लाम के प्रभाव के सम्बन्ध में सरचार्ल्स इलियट ने प्रायः दबी जुबान से कहा था कि रामानुज, माधवाचार्य तथा लिंगायत या वीरशैव पर कुछ इस्लामी प्रभाव हो सकता है, किन्तु उसके बाद डॉ0 ताराचन्द ने सारे संसार में यह भ्रम फैलाया कि शंकराचार्य, निम्बार्क, रामानुज, बल्लभाचार्य और दक्षिण के आलवार सन्त एवं वीरशैव तथा लिंगायत सम्प्रदाय सब के सब इस्लामी प्रभव से आविर्भूत हुये। इस भ्रान्त, अतिरंजित और लगभग गलत सिद्धान्त के तीसरे प्रमुख प्रचारक प्रोफेसर हुमायूं कबीर है।[17] प्रोफेसर कबीर ने हिन्दू–मुस्लिम एकता को पुष्ट करने के उद्देश्य से एक पुस्तक की रचना की, किन्तु जब डॉ0 ताराचन्द और प्रो0 कबीर यह कहते हैं कि स्वामी शंकराचार्य ने अपना अद्वैतवाद इस्लाम से लिया तो उनका यह विचार हास्यास्पद प्रतीत होने लगता है। ताराचन्द ने कालान्तर में अपने विचारों में संषोधन करते हुये यह प्रतिपादित किया कि हिन्दू धर्म पर इस्लाम का प्रभाव सतही है और दर्शन तथा विचार के धरातल पर इस्लाम ने हिन्दुत्व पर कोई प्रभाव नहीं डाला, किन्तु दूसरे विद्वान ताराचन्द के पुराने विचारों को ही प्रतिपादित एवं प्रचारित करते रहे।[18] इस प्रकार के विद्वानों में आविद हुसैन का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने जोश में आकर अपनी पुस्तक 'भारत की राष्ट्रीय संस्कृति' में यह लिख दिया कि भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग पर मुस्लिम संस्कृति का सीधा और गहरा प्रभाव पड़ा है। किन्तु बाद में उन्होंने स्वीकार किया कि 'शरीर से तो हिन्दुओं ने विजेताओं के सामने आत्म–समर्पण कर दिया, किन्तु आत्मा से वे अपने धर्म और जाति की सम्पूर्णता में छिप गये एवं हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच ऐसा बिलगाव आ गया कि दोनों के बीच किसी भी प्रकार का सम्पर्क नहीं हो सकता था।[19] इस भ्रम के शिकार यूसुफ हुसैन भी हैं, जिन्होंने यह माना कि हिन्दू बहुदेववादी थे, उनकी यह प्रवृत्ति इस्लाम के प्रभाव से एकेश्वरवाद में परिणत हुई।

जो विद्वान शंकर को इस्लाम का अनुकर्त्ता मानते हैं, उन्हें संम्भवतः यह ज्ञान नहीं है कि शंकर भारतीय विचारधारा में आकस्मिक घटना की तरह नहीं आये। उनकी परम्परा की लकीर उपनिशदों से आगे ऋग्वेद के 'नासदीय सूक्त' तक पहुँचती हैं। नासदीय सूक्त ने जीवन एवं सृश्टि की एकता के विषय में जो प्रश्न उठाये थे, उन्हीं प्रश्नों का समाधान उपनिशद, बौद्ध दर्षन एवं शंकर दर्षन में प्रकट हुआ। शंकर ने ब्रहमवाद की स्थापना जिस ढ़ग से की थी, वह भक्तों के लिये निराशाजनक था, क्योंकि भक्तों की प्रार्थना सुनने के लिये ब्रहम के कान खुले हुये नहीं थे।[20] इसलिये शंकर मत के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया उठी उसी के फलस्वरुप निम्बार्क, माधव, रामानुज, और बल्लभ, ये सभी महात्मा साकारवाद की ओर झुके क्योंकि शंकर का निराकार ब्रहम जन साधारण के पहुंच के बाहर था। विष्णु स्वामी, रामानुज, निम्वार्क, महत्व और बल्लमाचार्य का जन्म दक्षिण में इसलिये हुआ कि इनके पूर्व शंकराचार्य का जन्म हो चुका था। शुद्धादैत के विरुद्ध द्वैत अथवा विशिष्टाद्वैत की स्थापना करने के निमित ही इन आचार्यों का जन्म हुआ, जिन्होंने भक्ति की धारा को पुष्ट बनाकर सारे भारत को सींच दिया। शंकर और उनके बाद के आचार्यों के बीच क्रिया–प्रतिक्रिया का सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध की व्याख्या में इस्लामी प्रभाव की अनिवार्यता कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती।

धर्म के बाह्योचार ढीले इसलिये हो गये कि इस्लाम के जन्म के पूर्व ही इस देश में वेद–विरोधी लोगों का दल बहुत बड़ा हो गया था और जो बातें मुसलमानों के आगमन के बाद कबीर, दादू और नानक ने कहीं, उन उपदेशों का सिक्का बौद्ध सन्त (सिद्ध लोग) जनता के मन पर पहले ही (सातवीं, आठवीं एवं नवीं सदियों में) बिठा चुके थे।[21] जिसने सिद्धों के पद पढ़े हैं, वह त्रिकाल में भी यह नहीं मान सकता कि नानक, कबीर और दादू के प्रादुर्भाव का एक मात्र कारण इस्लाम था। इस्लामी सूक्तियों का प्रभाव इन सन्तों पर अवश्य पड़ा, किन्तु उनके वास्तविक पूर्वज मुस्लिम सूफी नहीं, बौद्ध–सरणी के सिद्ध सन्त थे, जिन्होंने धर्म के बाह्योचार पर उतने ही भीषण प्रहार किये थे, जितने भीषण प्रहार आगे चलकर निर्गुनियां सन्तों ने किये। कबीर की बहुत सी बातों में हम सिद्धों की उक्तियों की आवृत्ति पाते हैं। नानक आदि पर मुस्लिम प्रभाव पड़ा, यह ठीक है, किन्तु उनकी परम्परा का आरंम्भ यहाँ सिद्ध युग में ही हो चुकी थी। मुसलमान नहीं आते तब भी निर्गुनियां सन्तों की कोई न कोई पीढ़ी इतिहास के गर्भ में आ चुकी थी।[22]

भक्ति के विषय में भी यह कहना ठीक नहीं है कि इस्लाम की देन है। भक्ति का उदय उपनिशदकाल तक जाता है। द्वितीय सदी ई0पू0 के बेसनगर स्तम्भलेख में यूनानी राजदूत हेलियोडोरस अपने को 'भागवत' कहता है। यहां इस लेख में केवल वासुदेव का नाम आया है। स्पष्ट है कि इस समय वासुदेव देवाधिदेव रुप में पूज्य थे और उनके भक्त उपासक भागवत की संज्ञा से विख्यात थे। पाणिनि के अश्टाध्यायी (पांचवी सदी ई0 पू0) में 'वासुदेव' एवं 'आर्जुनक शब्द क्रमशः वासुदेव एवं अर्जुन के उपासकों के संदर्भ में प्रयुक्त हैं।[23] गीता में कृष्ण ने स्वयं कहा है कि 'जो भक्त मुझे प्रेम से भजते हैं वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ। गीता में भक्ति–मत या एकान्तिक धर्म का सम्यक विवेचन मिलता है। सुवीरा जायसवाल का यह मत नितांत समीचीन प्रतीत होता है कि एकान्तिन शब्द का प्रयोग महाभारत के नारायणीय खण्ड में वासुदेव के भक्तों से नारायण के भक्तों को श्रेष्ठ बताने के लिये किया गया है।[24] इस प्रकार वैशणवधर्म का उदय एक भक्ति सम्प्रदाय के रुप में पाणिनि के समय (पांचवी शताब्दी ई0पू0) तक अवश्य हो चुका था। चौथी शताब्दी ई0पू0 के यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने मथुरा में निवास करने वाले सूर–सेनाई लोगों द्वारा हेराक्लीज की पूजा का उल्लेख किया है। इतिहासकारों ने हेराक्लीज की अभिन्नता वासुदेव कृष्ण से बतायी है।

दक्षिण भारत में वैष्णव धर्म को आलवार सन्तों ने लोक प्रिय बनाया प्रमुख आलवारों का समय सातवीं से

नवीं शताब्दी तक है, यद्यपि उनकी परम्परा तीसरी सदी तक जाती है। भारत में उनकी परम्परा उस समय प्रारंभ हुई जब अरब में इस्लाम का जन्म भी नहीं हुआ था। भक्ति का लोक प्रिय प्रमसण महाभारत और गीता में प्रत्यक्ष है। इसके बाद वह भागवत में निरुपित हुई और रामानुज आदि के साथ तीब्रगति से फैली। गीता और रामानुज के बीच की कड़ी थे– ये आलवार सन्त।[25] कबीर और मीरा के रहस्य वादी पदों में मुसलमान सूफियों के प्रभाव देखे जा सकते हैं, किन्तु आलावरों के पदों में सच्चिदानन्द स्वरुप भागवत चिन्तन में निरंतरलीन रहने वाले ज्ञानी भक्त के दर्शन होते हैं। उत्तर में फैले हुये वेद–विरोधी आन्दोलनों के कारण हिन्दुत्व का शुद्ध रुप खिसककर दक्षिण चला गया था। यही कारण है कि जिस प्रकार उत्तर भारत में बौद्ध, सिद्ध धर्म के बाह्योचार का खण्डन कर रहे थे, दक्षिण में आलवार सन्त भी उसका समर्थन कर रहे थे। बौद्ध सिद्धों की यह खंडनात्मक परम्परा दादू नामक आदि सन्तों को मिली। किन्तु रामानन्दी और बल्लभचारी साधुओं को यही परम्परा आलवरों से प्राप्त हुई। जिन दिनों उत्तर में सिद्धोंका आन्दोलन चल रहा था, उन्हीं दिनों दक्षिण के आलवार और नायनार सन्त षिव और विष्णु के प्रेम में पागल हो रहे थे। ''धर्म के वाहयोपचार छंछे हैं एवं जाति का भेद निस्सार है'', यह दोनों ही धाराओं के लोग प्रचारित कर रहे थे, किन्तु इनके कारण भिन्न थे।

बौद्ध, सिद्ध धर्म के बाह्योचार का खण्डन इस लिये कर रहे थे कि बुद्ध से उन्हें यह खंडन की परम्परा प्राप्त थी, किन्तु आलवारों ने इन आचारों को गौण इसलिये माना कि वे भगवान के प्रेम में निमग्न थे और भगवान की शरण में आये भक्तों के बीच उन्हें कोई भेद भाव नहीं दिखाई देता था। आगे चलकर एक परम्परा में ब्राहमणत्व के विरुद्ध आक्रोश और निन्दा के भाव थे, किन्तु दूसरी परम्परा में वही लक्ष्य प्रेम के द्वारा प्राप्त किया गया था।[26]

जहाँ तक गुरु–परम्परा के उद्‌भव का प्रश्न है, प्राचीन भारत में उपनयन दीक्षा गुरु द्वारा प्रदान की जाती थी। गुरुकुल में ही रहकर ब्रह्मचारी शिक्षा ग्रहण करता था। ऋग्वैदिक तथा वैदिक शिक्षा मौखिक रुप से थी और गुरु के कथित मन्त्रों का शिष्यगण पाठ करते थे। गृहस्थाश्रम के संदर्भ में मनुस्मृति का कथन है कि बिना तीनों ऋणों (देवऋण, ऋशिऋण तथा पित्तऋण) को चुकाये मुक्ति संभव नहीं है। गुरु की महिमा का वर्णन सिद्धों ने किया है और सिद्धों के समय में बिहार अथवा उत्तरी भारत वर्श में इस्लाम नहीं पहुँचा था। सिद्धों में सबसे प्राचीन सरहपा हैं, जिनका समय आठवीं सदी कर अन्तिम भाग है।[27] बौद्ध भिक्षु सरहपाद ने सस्कृत एवं अपभ्रंष में अनेक रचनायें की हैं, किन्तु उनकी प्रसिद्धि का मुख्य कारण दोहाकोश है, जिसका संपादन राहुल संस्कृत्याान ने किया है। भोजन एवं खान–पान के प्रतिबन्धों का विरोध करते हुये सरहपाद चाण्डाल के घर भी भोजन करते थे। इस प्रकार सरहपाद ने सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त असमानताओं ओर भेदों का विरोध करते हुये निम्न वर्णो द्वारा उच्च वर्गों द्वारा उच्च वर्गों के विरुद्ध एक शक्तिशाली आन्दोलन का प्रारंभ किया। मुस्लिम आक्रमणें के समय यह आन्दोलन अपने पूर्ण गति में था और मुस्लिम विजय के पश्चात यह सुधारवादी धाराओं में परिवर्तित होकर सम्पूर्ण देश में फैल गया। अतः भारत में केवल इस्लाम ही समतावादी शक्ति नहीं थी। भारतीय समतावादी आन्दोलन में जहाँ एक ओर भारतीय धार्मिक विचारधारायें आत्मसात की गयीं थीं, वहीं दूसरी और देश की सामाजिक परम्पराओं से भी इसका समीकरण हो चुका था।[28]

इससे स्पष्ट होता है कि प्रो0 हबीब का यह विचार तर्क संगत नहीं है कि इस्लाम के आगमन के कारण मध्यकालीन भारत में सामाजिक समानता का आन्दोलन प्रारभ हुआ। वस्तुतः यह आन्दोलन मुस्लिम विजयों के शताब्दियों पूर्व में ही हिन्दू सामाजिक ढाँचे के अन्दर से ही उत्पन्न हुआ था। आठवीं से बारहवीं शताब्दियों के बीच सुप्रसिद्ध सिद्धों की संख्या चौरासी बताई गई है। इनमें से अधिकांश आचार्य ऐतिहासिक व्यक्तित्व थे, जो तत्कालीन बौद्ध जगत में अपने ज्ञान एवं आध्यात्मिक शक्तियों के लिये प्रसिद्ध थे।

प्रो0 हबीब इस विचार के हैं कि इस्लाम भारत में ही नहीं ईरान (अजाम) में भी सामाजिक क्रान्ति का प्रथम संदेश वाहक है, किन्तु इस संदर्भ में इस्लामिक इतिहास के अग्रणी अधिकारी विद्वान ब्लाडिमिर मिनार्स्की का कहना है कि इस्लाम सिद्धान्ततः जनतन्त्रवादी है, यद्यपि इसमें दासता के लिये द्वार खुले हैं। वस्तुतः अरब लोग ईरानी सामन्तों के अनुयायी थे। अलबलाधुरी द्वारा संदर्भित वकीदी के अनुसार अजेरवैजान में उन सब चीजों पर अधिकार जमा लिया, जो उन्हें मिला और कुछ लोग तो पर्शिया में भी जमीन खरीदे थे। स्थानीय कृशक अरबों की तरफ से कर्शक बना दिये गये थे। इसी लिये ईरान में अरबों के विरुद्ध व्यापक असन्तोष एवं विद्रोह फैला हुआ था। आठवीं सदी के अन्त में उनके विरुद्ध मध्य एवं पश्चिमी पर्शिया में व्यापक आन्दोलन चल रहे थे। इसके पश्चात तुर्कों का राज आया और पर्षिया के लोगों ने अपने धर्म इस्लाम से कभी समझौता नहीं किया। अतः मिनार्स्की का कथन है कि इस प्रकार के पतन एवं निराशय के युग में ईरान में सामाजिक क्रान्ति की बात करना अत्यन्त आलस्यपूर्ण बात है।[29]

ग्यारहवीं शताब्दी में गजनी के महमूद के मूर्ति भंजक उत्साह और लूट–पाट करने वाले आक्रमणों ने उत्तर भारत के हिन्दुओं के मन में अत्याधिक कड़ुवाहट पैदा कर दी। महमूद के समय पंजाब एवं उसकी राजधानी लाहौर गजनी साम्राज्य का एक नियमित प्रान्त हो गया और खुरासान, पार्शिया, अफगानिस्तान आदि से अनेक मुस्लिम परिवार आकर वहां निवास करने लगे और पंजाब में इस्लाम आगे की ओर बढ़ा। कुछ हिन्दू भी इस्लाम में परिवर्तित हो गये। 'सन्देश रासक' का लेखक अब्दुल रहमान, जो एक बुनकर था और मुलतान में बारहवीं सदी में रहता था, इसी वर्ग से सम्बन्धित प्रतीत होता है। महमूद के उत्तराधिकारियों ने भी हिन्दुस्तान में अपना साम्राज्य विस्तृत करने का प्रयत्न किया।

गजनवियों के पतन के साथ गोर वंश सत्ता में आया। प्रारंभिक कठिनाइयों के साथ मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज चाहमान एवं जयचन्द्र गाहड़वाल पर क्रमशः

1192 ई0 1193 ई0 में विजय प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। उसका जनरल बख्तियार खिलजी तेरह साल के अन्दर ही ब्रहमपुत्र के किनारे पहुंच गया।[30] इस प्रकार सन् 712 ई0 में अरबों द्वारा सिन्ध विजय के पश्चात अनेक प्रयत्नों के बावजूद भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना बारहवीं सदी के अन्त में ही हो सकी। किन्तु तुर्कों की विजय की तीव्रता में सन्देह नहीं है।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य मुख्यतः पूर्वमध्यकाल में मुस्लिम आकातांओं के सफल और असफल आक्रमणों के फलस्वरुप तत्कालीन भारतीय समाज, धर्म एवं राजनीतिक परिदृश्य पर हुए परिवर्तनों को रेखांकित करना है। भारतीय सामाजिक – आर्थिक संरचना में बदलाव होने आरम्भ हुए। विभिन्न वर्णों एवं जातियों के लोग अपने–अपने कर्त्तव्यकर्मों के प्रति उदासीन हो गये। कुलीन वर्गों में सुख और वैभव की चाह अधिक हो गयी। सामन्ती मनोवृत्ति प्रबल हो गयी। अस्पृश्यता की भावना पहले की अपेक्षा अधिक मजबूत ढ़ंग से उभरने लगी। समाज में उच्च एवं निम्न वर्गों का अन्तर अधिक गहरा हो गया। इस्लाम के प्रसार व प्रभाव में हिन्दू समाज में धार्मिक चेतना को संकीर्ण और अर्न्तमुखी बना दिया, जिसका प्रतिफल यह हुआ कि अब भारतीय समाज पूर्णतया प्रतिरक्षात्मक हो गया।

निष्कर्ष

पूर्व मध्यकाल में भारतीय परिक्षेत्र में मुस्लिम आक्रांताओं के लगाातार सैनिक अभियानों ने भारतीय संस्कृति को प्रत्येक पहलू से प्रभावित किया। राजनैतिक रुप में पहली बार मुस्लिम सत्ता स्थापित हुई, धार्मिक क्षेत्र में इस्लाम का भारत में आगमन हुआ, जिसने भारत के पूर्व में स्थापित धार्मिक विचारों और आस्था को प्रकट करने वाले पूजा–स्थलों के आस्तित्व पर संकट खड़ा कर दिया। अनुदार–प्रवृत्ति वाले शासकों की नीतियाँ सिर्फ इस्लाम को ही केन्द्र में रखकर बनायीं गईं। जबकि भारत में सदियों से लोग उदारवादी एवं सकारात्मक दृष्टिकोण से विभिन्न धार्मिक पंथो एवं विचारधाराओं में सन्तुलन स्थापित किये हुए थे, हालांकि अरबी एवं तुर्की आक्रमण के फलस्वरुप भारत में पशासनिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में नये तत्वों का उदय हुआ, केन्द्रीय सत्ता पुनः पूर्व की भांति मजबूत होने लगी, एक नई शहरी अर्थव्यवस्था का प्रार्दुभाव हुआ। व्यापारिक क्षेत्र में भी एशिया और अफ्रीका के अनेकों देशों से सम्बध स्थापित हुऐ। अन्त में, कह सकते हैं कि सम्पूर्ण अर्थ में तो परिवर्तन भारतीय स्थापत्यकला, शिक्षा पद्धति, प्रशासनिक ढांचा एवं–धार्मिक दृष्टिकोण में दिखाई पड़ता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *हेग, डब्लू, दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, III, पृ.12*
2. *सतीशचन्द्र, मध्यकालीन भारत, (1997) एन0 सी0 ई0 आर0 टी0, नई दिल्ली, पृ.48.*
3. *हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत (1987), नई दिल्ली, पृ.124.*
4. *सतीशचन्द्र, मध्यकालीन भारत, (1997) एन0 सी0 ई0 आर0 टी0, नई दिल्ली, पृ.50.*
5. *सतीश्चन्द्र, मध्यकालीन भारत, (1997) एन0 सी0 ई0 आर0 टी0, नई दिल्ली, पृ.51*
6. *सतीशचन्द्र, मध्यकालीन भारत, (1997) एन0 सी0 ई0 आर0 टी0, नई दिल्ली, पृ.51*
7. *सतीशचन्द्र, वहीं, पृ.56, वर्मा, हरिश्चन्द्र,मध्यकालीन भारत (1987), पृ.125.*
8. *वर्मा, हरिश्चन्द्र, वहीं, पृ.125.*
9. *वर्मा, हरिश्चन्द्र, वहीं, पृ.135.*
10. *इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस पृ.141 और आगे; सतीषचन्द्र, मध्यकालीन भारत, पंचम संस्करण नयी दिल्ली, 1997, पृ.5,49,दिनकर रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, (2004), पृ.222–223,हजरत मुहम्मद का समय 570–632 ई. माना जाता है (वर्मा, हरिश्चन्द्र, वही, पृ.118)*
11. *मजूमदार, आर.सी, सं0 दि एज आफ इम्पीरियल कन्नौज (1955) में अल्टेकर, ए.एस., पृ.17.*
12. *यशस्तिलक, VII. 24*
13. *हन्दिकी, यशस्तिलक ऐण्ड इण्डियन कल्चर पृ.376.*
14. *यादव, बी.एन.एस, सोसाइटी ऐण्ड कल्चर ....., पृ.103.*
15. *ताराचन्द्र, इन्फ्लूएन्स ऑफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर, द्वितीय संस्करण पृ.132.*
16. *यादव, वही, पृ.59*
17. *कबीर, हुमायूँ, अवर हेरिटेज; दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय (2004) इलाहाबाद,*
18. *ताराचन्द्र, हिस्ट्री आफ द फ्रीडम मूममेन्ट, जिल्द 1, दिनकर, रामधारी सिंह,संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 295.*
19. *दिनकर, रामधारी सिंह, वही, पृ.295–296.*
20. *पाण्डेय, जी.सी, फाउन्डेशन्स आफ इण्डियन कल्चर, वाल्यूम–1 नयी दिल्ली,1984,पृ.109,113,114,116.*
21. *दिनकर रामधारी सिंह, वही, पृ.301.*
22. *वही, पृ.302, बुद्ध प्रकाश, ऐसपेक्ट्रस आफ इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड सिविलिजेशन,1965, पृ.265–273.*
23. *अष्टाध्यायी, 4.3.9.*
24. *जायसवाल, सुवीरा, वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ.15.*
25. *शर्मा चन्द्रधर, भारतीय दर्षन– आलोचन और अनुशीलन, वाराणसी, 1990, पृ.304–306*
26. *दिनकर वही, पृ.304*
27. *बुद्ध प्रकाश, ऐसपेक्ट्स आफ इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड सिविलिजेशन, पंचम संस्करण, पृ.265.*
28. *सरहपाद, दोहाकोश, पृ.26–''जई चण्डाल–धरे मुज्जई, तअविण लग्गईलेज', बुद्ध प्रकाश, वही, पृ.266–267.*
29. *वी. मिनार्की,'' ईरान अपोजीशन, मारटयार्डम ऐण्ड रिवोल्ट'' द्रष्टय जी0 ई0 वान ग्रुनेबाम, यूनिटी ऐण्ड बेराइटी इन मुस्लिम सिविलिजेशन, 1955, पृ. 199–200, बुद्ध प्रकाश, वही, पृ.261, पा.टि.127.*
30. *सतीशचन्द्र, मेडुवल इण्डिया, एन.सी.आर.टी, पंचम संस्करण, 1997, 42–43, हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत–750–1540, दिल्ली विश्वविद्यालय, पुनर्मुद्रित, 1987, अध्याय–1*